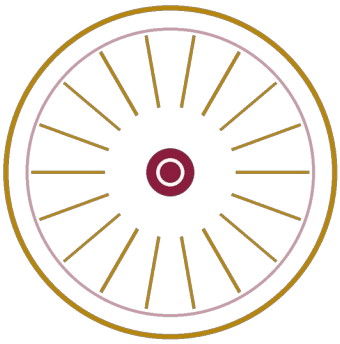

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.01**

> अर्जुन उवाच |
>
> संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् |
>
> त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन || **01** ||

हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे महाबाहो! हे हृषीकेश! हे केशिनिषूदन! मैं 'संन्यास' और 'त्याग' के तत्त्व को अलग-अलग समझना चाहता हूँ।

सरल व्याख्या:

गीता के अंतिम अध्याय के आरंभ में अर्जुन श्रीकृष्ण से एक अत्यंत व्यावहारिक प्रश्न पूछते हैं। वे जानना चाहते हैं कि संन्यास (कर्मों को छोड़ देना) और त्याग (कर्मफल की आसक्ति को छोड़ना) में क्या सूक्ष्म अंतर है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... अध्यात्म के मार्ग पर कर्म छोड़ने और कर्मफल त्यागने के अंतर को गहराई से समझना आवश्यक है।

श्लोक संख्या: **18.02**

> श्रीभगवानुवाच |
>
> काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः |
>
> सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः || **02** ||

हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान बोले—विद्वान पुरुष काम्य कर्मों (सकाम कर्मों) के त्याग को 'संन्यास' समझते हैं और विचारशील पुरुष सब कर्मों के फलों के त्याग को 'त्याग' कहते हैं।

सरल व्याख्या:

भगवान स्पष्ट करते हैं कि व्यक्तिगत मनोकामनाओं या स्वार्थ पूर्ति के लिए किए जाने वाले कर्मों को पूरी तरह बंद कर देना 'संन्यास' है। दूसरी ओर, अपने सभी कर्तव्यों को करते हुए उनके परिणाम या फल की इच्छा को छोड़ देना 'त्याग' कहलाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कामनाओं का त्याग संन्यास है और कर्मों के फल की आसक्ति छोड़ देना सच्चा त्याग है।

Satyanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.03**

> त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः |
> यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे || **03** ||

हिन्दी अनुवाद:

कई विद्वान यह कहते हैं कि कर्म मात्र दोषयुक्त हैं, इसलिए उन्हें त्याग देना चाहिए; जबकि दूसरे विद्वान यह कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं।

सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण यहाँ उस समय प्रचलित दो भिन्न विचारों का उल्लेख करते हैं। कुछ ज्ञानी मानते थे कि हर कर्म में कोई न कोई दोष होता है, इसलिए कर्म ही छोड़ देने चाहिए। परंतु अन्य विचारकों का मानना था कि यज्ञ, दान और तप जैसे शुभ कर्म कभी नहीं छोड़े जाने चाहिए।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्मों को छोड़ने के विषय में विद्वानों के अलग-अलग दृष्टिकोण रहे हैं, जिनका समाधान आगे श्रीकृष्ण करते हैं।

श्लोक संख्या: **18.04**

> निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम |
> त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः || **04** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे पुरुषों में श्रेष्ठ अर्जुन! उस त्याग के विषय में तुम मेरा निश्चय सुनो; क्योंकि त्याग सात्त्विक, राजस और तामस—भेद से तीन प्रकार का कहा गया है।

सरल व्याख्या:

भगवान अब इस विषय पर अपना अंतिम और प्रामाणिक निर्णय देते हैं। वे अर्जुन से कहते हैं कि त्याग का अर्थ केवल सब कुछ छोड़ देना नहीं है, बल्कि मनुष्य की मनोवृत्ति के आधार पर त्याग भी तीन प्रकार का होता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... त्याग केवल बाह्य क्रिया नहीं, बल्कि मन की भावना और गुणों से निर्धारित होता है।

Satyanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.05**

> यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् |
> यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् || **05** ||

हिन्दी अनुवाद:

यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्याग करने योग्य नहीं हैं, बल्कि वे तो अवश्य करने चाहिए; क्योंकि यज्ञ, दान और तप—ये तीनों ही बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं।

सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण अपना स्पष्ट निर्णय देते हैं कि समाज कल्याण (यज्ञ), निस्वार्थ सेवा (दान) और आत्म-अनुशासन (तप) कभी बंद नहीं करने चाहिए। ये कर्म मनुष्य के मन और आत्मा को शुद्ध करने वाले साधन हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्तव्य, सेवा और अनुशासन ऐसे कार्य हैं जो मनुष्य के मन को हमेशा निर्मल बनाते हैं।

श्लोक संख्या: **18.06**

> एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च |
> कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् || **06** ||

हिन्दी अनुवाद:

इसलिए हे पार्थ! इन कर्मों को तथा अन्य सभी श्रेष्ठ कर्मों को आसक्ति और फलों की इच्छा का त्याग करके ही करना चाहिए—यह मेरा निश्चित किया हुआ उत्तम मत है।

सरल व्याख्या:

यह कर्मयोग का परम सूत्र है। भगवान कहते हैं कि व्यक्ति को अपने सभी आवश्यक और शुभ कर्म करते रहना चाहिए, लेकिन उन्हें करते समय दो बातें छोड़नी होंगी—पहली, यह अहंकार कि 'मैं कर्ता हूँ' और दूसरी, उसके बदले फल पाने की लालसा।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... बिना आसक्ति और बिना फल की चाहत के कर्म करना ही जीवन की सबसे श्रेष्ठ कला है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.07**

> नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते |
>
> मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः || **07** ||

हिन्दी अनुवाद:

परंतु नियत (कर्तव्य) कर्म का स्वरूप से त्याग उचित नहीं है। मोह के कारण उसका त्याग कर देना 'तामस त्याग' कहा गया है।

सरल व्याख्या:

अपने अनिवार्य कर्तव्यों और जिम्मेदारियों से भाग जाना या अज्ञान और आलस्य के कारण काम छोड़ देना सच्चा त्याग नहीं है। ऐसा त्याग तमोगुणी होता है और मनुष्य को पतन की ओर ले जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... आलस्य या अज्ञानवश अपने कर्तव्यों से पीछे हटना तामसिक व्यवहार है।

श्लोक संख्या: **18.08**

> दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् |
>
> स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् || **08** ||

हिन्दी अनुवाद:

जो कुछ कर्म है वह सब दुःख रूप ही है—ऐसा समझकर यदि कोई शारीरिक कष्ट के भय से कर्मों का त्याग कर देता है, तो वह ऐसा राजस त्याग करके त्याग के फल को नहीं पाता।

सरल व्याख्या:

यदि कोई व्यक्ति केवल इसलिए अपने कर्तव्यों को छोड़ देता है क्योंकि उनमें मेहनत लगती है या शरीर को कष्ट होता है, तो वह राजसिक त्याग है। ऐसे त्याग से न तो आत्म-शांति मिलती है और न ही त्याग का वास्तविक आध्यात्मिक लाभ।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कठिनाई या शारीरिक कष्ट से डरकर काम छोड़ना सच्चा त्याग नहीं है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.09**

> कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन |
> संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः || **09** ||

हिन्दी अनुवाद:
हे अर्जुन! 'शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म करना ही योग्य है'—ऐसे भाव से जो नियत कर्म आसक्ति और फल का त्याग करके किया जाता है, वही सात्त्विक त्याग माना गया है।

सरल व्याख्या:
सच्चा और सात्त्विक त्याग कर्मों को छोड़ना नहीं है, बल्कि यह मानकर कर्म करना है कि यह मेरा पवित्र कर्तव्य है। जब मनुष्य बिना किसी स्वार्थ और बिना किसी फल की कामना के काम करता है, तब वह सात्त्विक त्यागी बनता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्तव्य भाव से निष्काम होकर कर्म में लगे रहना ही सात्त्विक त्याग है।

श्लोक संख्या: **18.10**

> न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते |
> त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः || **10** ||

हिन्दी अनुवाद:
जो न तो अप्रिय कर्म से द्वेष करता है और न प्रिय कर्म में आसक्त होता है—वह सत्त्वगुण से युक्त, बुद्धिमान और संशय-रहित पुरुष ही सच्चा त्यागी है।

सरल व्याख्या:
सात्त्विक त्यागी की पहचान यह है कि वह अप्रिय या कठिन काम सामने आने पर उससे नफरत नहीं करता, और मनपसंद काम मिलने पर उसमें खो नहीं जाता। वह हर परिस्थिति में समभाव रखता है और उसकी बुद्धि पूरी तरह स्पष्ट तथा संशय-रहित होती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... अनुकूल और प्रतिकूल दोनों परिस्थितियों में समान भाव रखना ही ज्ञानी और सच्चे त्यागी का लक्षण है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.11**

> न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः |
> यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते || **11** ||

हिन्दी अनुवाद:
क्योंकि शरीरधारी किसी भी मनुष्य द्वारा संपूर्णता से सब कर्मों का त्याग किया जाना संभव नहीं है; इसलिए जो कर्मफल का त्यागी है, वही वास्तव में 'त्यागी' कहा जाता है।

सरल व्याख्या:
श्रीकृष्ण एक व्यावहारिक सत्य सामने रखते हैं। जब तक मनुष्य का शरीर है, तब तक सांस लेना, खाना, पीना और शरीर का संचालन जैसे कर्म अनिवार्य हैं। इसलिए शारीरिक रूप से कर्मों को पूरी तरह छोड़ देना असंभव है। वास्तविक त्याग कर्मों को बंद करना नहीं, बल्कि उन कर्मों से मिलने वाले फलों और इच्छाओं का त्याग करना है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्मों को छोड़ना नहीं, बल्कि कर्मफलों की आसक्ति छोड़ना ही व्यावहारिक और सच्चा त्याग है।

श्लोक संख्या: **18.12**

> अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् |
> भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् || **12** ||

हिन्दी अनुवाद:
कर्मफल का त्याग न करने वाले मनुष्यों के कर्मों का तीन प्रकार का फल—अनिष्ट (बुरा), इष्ट (अच्छा) और मिश्र (मिला-जुला)—मरने के बाद भी होता है; परंतु त्यागी मनुष्यों के कर्मों का फल कहीं भी और कभी भी नहीं होता।

सरल व्याख्या:
जो लोग फल की कामना रखकर काम करते हैं, उन्हें अपने कर्मों के अनुसार अच्छा, बुरा या मिला-जुला फल भोगना ही पड़ता है। लेकिन जो निष्काम भाव से केवल कर्तव्य समझकर कर्म करते हैं, वे कर्मबंधनों से मुक्त रहते हैं और उनका कोई सांसारिक कर्मफल शेष नहीं बचता।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... निष्काम भाव से किए गए कर्म मनुष्य को कर्मबंधन और जन्म-मरण के चक्र से मुक्त कर देते हैं।

Satyanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.13**

> पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे |
>
> साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् || **13** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे महाबाहो! संपूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिए सांख्य सिद्धांत (ज्ञानयोग) में कहे गए इन पाँच कारणों को तुम मेरे से भली-भांति जानो।

सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण समझाते हैं कि दुनिया का कोई भी काम केवल एक व्यक्ति के चाहने से पूरा नहीं होता। हर कार्य को संपन्न करने के पीछे पाँच मुख्य घटक या कारण होते हैं। ज्ञानी मनुष्य इन पाँचों कारणों को समझकर स्वयं को कर्ता मानने के अहंकार से बच जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... किसी भी कार्य की सफलता के पीछे कई कारक होते हैं, केवल हमारा अहंकार नहीं।

श्लोक संख्या: **18.14**

> अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् |
>
> विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् || **14** ||

हिन्दी अनुवाद:

(कर्मों के पाँच कारण ये हैं—) अधिष्ठान (शरीर), कर्ता (अहंकारयुक्त जीव), तरह-तरह के साधन (इन्द्रियाँ), अनेक प्रकार की चेष्टाएँ (प्रयत्न) और पाँचवाँ कारण दैव (प्रारब्ध/ईश्वरीय विधान) है।

सरल व्याख्या:

भगवान किसी भी कर्म को पूरा करने वाले पाँचों घटकों को विस्तार से गिनाते हैं: अधिष्ठान: वह स्थान या शरीर जहाँ कर्म होता है। कर्ता: काम करने वाला जीव। करण: कर्म करने के साधन या इन्द्रियाँ। चेष्टा: शारीरिक और मानसिक प्रयास। दैव: अदृश्य शक्ति, प्रारब्ध या ईश्वर का विधान।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कार्य की सिद्धि में हमारे प्रयास के साथ-साथ प्रकृति और ईश्वर का विधान भी समान रूप से भागीदार होता है।

Satyoanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.15**

> शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः |
> न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः || **15** ||

हिन्दी अनुवाद:
मनुष्य शरीर, वाणी और मन से जो भी धर्मानुकूल (सही) या विपरीत (गलत) कर्म का प्रारंभ करता है, उसके यही पाँचों कारण होते हैं।

सरल व्याख्या:
चाहे कोई काम अच्छा हो या बुरा, और उसे शरीर से किया जाए, बोलकर किया जाए या केवल मन में सोचा जाए—हर प्रकार की क्रिया इन्हीं पाँचों कारणों के सहयोग से पूरी होती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे विचार, वाणी और शारीरिक क्रियाएं सभी इन्हीं पाँच तत्वों से संचालित होते हैं।

श्लोक संख्या: **18.16**

> तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः |
> पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः || **16** ||

हिन्दी अनुवाद:
ऐसा होने पर भी जो अज्ञानी बुद्धि वाला मनुष्य केवल अपने-आप (आत्मा) को ही कर्ता मानता है, वह मंदबुद्धि सही नहीं देखता।

सरल व्याख्या:
जब किसी भी कार्य को पूरा करने में पाँच कारण मिलकर काम कर रहे हैं, फिर भी जो व्यक्ति अहंकारवश यह सोचता है कि 'यह सब केवल मैंने ही किया है', वह अज्ञानी है। वह सत्य को देखने में असमर्थ रहता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... स्वयं को हर काम का एकमात्र कर्ता समझना अज्ञान और अहंकार का प्रतीक है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.17**

> यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते |
> हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते || **17** ||

हिन्दी अनुवाद:
जिस मनुष्य के अंतःकरण में 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा अहंकार भाव नहीं है और जिसकी बुद्धि (फलों और कर्मों में) लिप्त नहीं होती, वह इन सब लोकों को मारकर भी न तो मारता है और न ही पाप से बँधता है।

सरल व्याख्या:
यह अर्जुन के युद्ध सम्बंधी संशय का अंतिम समाधान है। जब व्यक्ति अहंकार से मुक्त होकर और केवल धर्म तथा अपने अनिवार्य कर्तव्य का पालन करने के लिए कर्म करता है, तो उसके कर्मों का कोई व्यक्तिगत दोष या पाप उसे नहीं लगता।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... अहंकार और व्यक्तिगत स्वार्थ से रहित होकर किया गया कर्तव्य कर्म पाप-पुण्य के बंधनों से परे होता है।

श्लोक संख्या: **18.18**

> ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना |
> करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः || **18** ||

हिन्दी अनुवाद:
ज्ञान (जानने की क्रिया), ज्ञेय (जानने योग्य विषय) और परिज्ञाता (जानने वाला)—ये तीनों कर्म की प्रेरणा (प्रेरणा देने वाले) हैं; तथा करण (साधन), कर्म (क्रिया) और कर्ता—ये तीनों कर्म के संग्रह (आधार) हैं।

सरल व्याख्या:
यहाँ कर्म के मनोविज्ञान को समझाया गया है। कोई भी काम शुरू होने से पहले मन में तीन बातें होती हैं—जानने वाला, जानकारी और जिसे जाना जाए। और जब वह काम धरातल पर होता है, तो साधन, क्रिया और करने वाला—इन तीनों की आवश्यकता होती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी समझ और ज्ञान ही हमारे कर्मों को दिशा और प्रेरणा देते हैं।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.19**

> ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः |
> प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि || **19** ||

हिन्दी अनुवाद:

गुणों की संख्या करने वाले शास्त्र (सांख्य दर्शन) में ज्ञान, कर्म और कर्ता—गुणों के भेद से तीन-तीन प्रकार के ही कहे गए हैं; उनको भी तुम मुझसे भली-भांति सुनो।

सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि प्रकृति के तीनों गुणों (सत्त्व, रज और तम) के अनुसार ज्ञान, कर्म और काम करने वाले व्यक्ति (कर्ता) की सोच भी तीन-तीन श्रेणियों में बँट जाती है। अब आगे वे इन्हीं का विस्तार से वर्णन करते हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे गुणों का प्रभाव हमारे ज्ञान, कर्म और काम करने की शैली पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है।

श्लोक संख्या: **18.20**

> सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते |
> अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् || **20** ||

हिन्दी अनुवाद:

जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक्-पृथक् विभक्त (अलग-अलग दिखने वाले) सब प्राणियों में एक अविनाशी और अखंड परमेश्वर भाव को देखता है, उस ज्ञान को तुम 'सात्त्विक ज्ञान' जानो।

सरल व्याख्या:

सात्त्विक ज्ञान की पहचान यह है कि वह मनुष्य को एकता का दर्शन कराता है। भले ही बाहर से सब जीव, जाति और रूप अलग-अलग दिखाई दें, लेकिन जो व्यक्ति सभी के भीतर एक ही अविनाशी परमात्मा की चेतना को देखता है, वही सच्चा सात्त्विक ज्ञानी है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... विविधता में छिपी हुई एक अखंड चेतना को देखना ही ज्ञान का उच्चतम सात्त्विक रूप है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.21**

> पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् |
> वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् || **21** ||

हिन्दी अनुवाद:

परंतु जो ज्ञान सब प्राणियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के नाना भावों को अलग-अलग करके देखता है, उस ज्ञान को तुम 'राजस ज्ञान' जानो।

सरल व्याख्या:

राजसिक ज्ञान मनुष्य को भेदभाव की दृष्टि देता है। ऐसा ज्ञान हर प्राणी, व्यक्ति या वस्तु को एक-दूसरे से पूरी तरह अलग और भिन्न मानता है। इसमें एकता या परमात्मा का दर्शन नहीं होता, बल्कि भेद और विषमता की भावना बनी रहती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... भेद-भाव और विषमता को बढ़ावा देने वाली समझ राजसिक श्रेणी में आती है।

श्लोक संख्या: **18.22**

> यत्तुकृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् |
> अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् || **22** ||

हिन्दी अनुवाद:

तथा जो ज्ञान किसी एक कार्य (शरीर या मूर्ति आदि) में ही संपूर्ण के समान आसक्त है, जो बिना किसी कारण के (विवेकहीन) है, वास्तविक अर्थ से रहित और तुच्छ है, वह 'तामस ज्ञान' कहा गया है।

सरल व्याख्या:

तामसिक ज्ञान संकीर्ण और विवेकहीन होता है। ऐसा व्यक्ति किसी एक छोटी सी चीज़, विचार या मूर्ति में इतना उलझ जाता है कि उसे ही सब कुछ मान लेता है। उसमें न कोई तर्क होता है और न ही व्यापक सत्य की समझ।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... संकीर्णता और अंधविश्वास ही तामसिक दृष्टिकोण का मुख्य लक्षण है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.23**

> नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् |
> अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते || **23** ||

हिन्दी अनुवाद:

जो कर्म शास्त्र-विधि से नियत किया गया हो, आसक्ति से रहित हो, बिना राग-द्वेष के किया गया हो और फल की इच्छा न रखने वाले पुरुष द्वारा किया गया हो—वह कर्म 'सात्त्विक' कहा जाता है।

सरल व्याख्या:

सात्त्विक कर्म की चार पहचान हैं—वह शास्त्र और विवेक के अनुकूल हो, उसमें कर्ता का कोई घमंड न हो, वह किसी से नफरत या पक्षपात के बिना किया गया हो, और उसके पीछे किसी व्यक्तिगत फल की लालसा न हो।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... निष्काम, समभाव और कर्तव्य बुद्धि से किया गया कार्य ही सच्चा सात्त्विक कर्म है।

श्लोक संख्या: **18.24**

> यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः |
> क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् || **24** ||

हिन्दी अनुवाद:

परंतु जो कर्म बहुत से परिश्रम से युक्त होता है तथा भोगों को चाहने वाले पुरुष द्वारा अथवा अहंकारपूर्वक किया जाता है, वह कर्म 'राजस' कहा गया है।

सरल व्याख्या:

राजसिक कर्म वह है जिसके पीछे सांसारिक सुख-सुविधाओं की इच्छा होती है। ऐसे काम में 'मैं कर रहा हूँ' का भारी घमंड होता है और उसे पूरा करने में अत्यधिक मानसिक तथा शारीरिक तनाव या परिश्रम उठाना पड़ता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... अहंकार और अत्यधिक तृष्णा से किए गए कार्य मन को थकाते और अशांत करते हैं।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.25**

> अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् |
> मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुदाहृतम् || **25** ||

हिन्दी अनुवाद:
जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और अपनी सामर्थ्य का विचार किए बिना केवल अज्ञानवश (मोह से) आरंभ किया जाता है, वह कर्म 'तामस' कहा गया है।

सरल व्याख्या:
तामसिक कर्म बिना सोचे-समझे शुरू किया जाता है। इसमें व्यक्ति यह नहीं सोचता कि आगे चलकर इसका क्या बुरा नतीजा (परिणाम) होगा, कितना नुकसान (क्षय) होगा, दूसरों को कितनी तकलीफ (हिंसा) पहुँचेगी या उसकी अपनी क्षमता (पौरुष) है भी या नहीं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... बिना दूरदर्शिता और बिना अपनी क्षमता का विचार किए किया गया काम विनाशकारी होता है।

श्लोक संख्या: **18.26**

> मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः |
> सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते || **26** ||

हिन्दी अनुवाद:
जो आसक्ति से रहित है, अहंकार के वचन न बोलने वाला है, धैर्य और उत्साह से युक्त है तथा कार्य के सिद्ध होने और न होने (सफलता-विफलता) में विकार-रहित (समान) रहता है—वह कर्ता 'सात्त्विक' कहा जाता है।

सरल व्याख्या:
सात्त्विक काम करने वाले व्यक्ति के लक्षण ये हैं कि वह घमंड नहीं करता, कठिन से कठिन परिस्थिति में भी धैर्य और आंतरिक उत्साह बनाए रखता है, और सफलता मिले या असफलता—दोनों में शांत रहता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... सफलता और विफलता में समान रहते हुए उत्साह से कर्तव्य पथ पर टिके रहना ही सात्त्विक कर्ता की पहचान है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.27**

> रागी कर्मफलप्रेप्सुलुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः |
> हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः || **27** ||

हिन्दी अनुवाद:

जो अनुरागी (आसक्त), कर्मों के फल की इच्छा रखने वाला, लोभी, दूसरों को कष्ट देने वाले स्वभाव वाला, अपवित्र और हर्ष-शोक से युक्त है—वह कर्ता 'राजस' कहा गया है।

सरल व्याख्या:

राजसिक कर्ता वह है जो काम के नतीजे से बुरी तरह चिपक जाता है। वह लालची होता है, काम बनने पर बहुत ज्यादा खुश और बिगड़ने पर गहरे शोक या उदासी में डूब जाता है। उसमें दूसरों के प्रति दया भाव नहीं होता।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... अत्यधिक लालच और परिणामों से होने वाला मानसिक उतार-चढ़ाव मनुष्य को राजसिक बना देता है।

श्लोक संख्या: **18.28**

> अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः |
> विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते || **28** ||

हिन्दी अनुवाद:

जो अयोग्य (असंयत), अशिष्ट (गंभीरताहीन), घमंडी, धूर्त, दूसरों की जीविका नष्ट करने वाला, आलसी, सदा उदास रहने वाला और काम को टालने वाला (दीर्घसूत्री) है—वह कर्ता 'तामस' कहा गया है।

सरल व्याख्या:

तामसिक कर्ता की पहचान यह है कि वह बहुत आलसी होता है, हर काम को आगे के लिए टालता रहता है (दीर्घसूत्री), छल-कपट करता है, हमेशा निराश या दुःखी रहता है और कोई भी काम जिम्मेदारी से नहीं करता।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... काम टालने की आदत, आलस्य और निराशावादी सोच तामसिक जीवन शैली का लक्षण है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.29**

> बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु |
> प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय || **29** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे धनंजय! अब तुम बुद्धि का और धृति (धैर्य/धारणा शक्ति) का भी गुणों के अनुसार तीन प्रकार का भेद मेरे द्वारा संपूर्णता से और अलग-अलग कहा जाने वाला सुनो।

सरल व्याख्या:

भगवान श्रीकृष्ण अब अर्जुन को समझाते हैं कि जिस प्रकार ज्ञान, कर्म और कर्ता के तीन-तीन प्रकार होते हैं, उसी प्रकार मनुष्य की निर्णय लेने की क्षमता (बुद्धि) और उसके धैर्य रखने की शक्ति (धृति) भी तीन गुणों के प्रभाव से तीन प्रकार की होती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी निर्णय क्षमता और धैर्य का स्तर हमारे आंतरिक गुणों पर निर्भर करता है।

श्लोक संख्या: **18.30**

> प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये |
> बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी || **30** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! जो बुद्धि प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग को, कर्तव्य और अकर्तव्य को, भय और अभय को तथा बंधन और मोक्ष को तत्त्व से जानती है, वह बुद्धि 'सात्त्विकी' है।

सरल व्याख्या:

सात्त्विक बुद्धि वह स्पष्ट विवेक है जो यह सही-सही समझता है कि किस काम में लगना चाहिए और किस काम से हटना चाहिए, क्या सही (कर्तव्य) है और क्या गलत (अकर्तव्य), किससे डरना चाहिए और किससे नहीं, तथा क्या चीज़ मनुष्य को बाँधती है और क्या मुक्त करती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... सही और गलत का स्पष्ट विवेक होना ही सात्त्विक बुद्धि की पहचान है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.31**

> यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च |
> अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी || **31** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्म को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को यथार्थ रूप से (सही-सही) नहीं जानता, वह बुद्धि 'राजसी' है।

सरल व्याख्या:

राजसिक बुद्धि में अस्पष्टता और भ्रम होता है। ऐसी बुद्धि वाला व्यक्ति सही और गलत, या धर्म और अधर्म का निर्णय अपने व्यक्तिगत स्वार्थ, राग या द्वेष के आधार पर करता है, जिससे वह अक्सर गलत फैसले ले बैठता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... स्वार्थ और भ्रम के कारण सही-गलत का स्पष्ट निर्णय न ले पाना राजसिक बुद्धि का लक्षण है।

श्लोक संख्या: **18.32**

> अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता |
> सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी || **32** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! जो तमोगुण से ढकी हुई बुद्धि अधर्म को ही 'धर्म' मान लेती है और सब बातों को उल्टी (विपरीत) ही मानती है, वह बुद्धि 'तामसी' है।

सरल व्याख्या:

तामसिक बुद्धि पूरी तरह अज्ञान के अंधकार में डूबी होती है। यह बुद्धि गलत को सही और सही को गलत मानती है। ऐसा व्यक्ति अधर्म, हिंसा या कुमार्ग को ही अपना धर्म मानकर उस पर अड़ा रहता है और हर बात का उल्टा अर्थ निकालता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कुमार्ग को धर्म मान लेना और विपरीत विचार रखना तामसिक बुद्धि की पराकाष्ठा है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.33**

> धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः |
> योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी || **33** ||

हिन्दी अनुवाद:
हे पार्थ! जिस अव्यभिचारिणी (अचल) धारण शक्ति द्वारा मनुष्य योग-साधना से मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण (नियंत्रित) करता है, वह धृति (धैर्य) 'सात्त्विकी' है।

सरल व्याख्या:
श्रीकृष्ण यहाँ 'सात्त्विक धैर्य' की व्याख्या करते हैं। जब मनुष्य का संकल्प और मन की शक्ति इतनी दृढ़ हो जाए कि वह योग और ध्यान के माध्यम से अपने मन, श्वास (प्राण) और इन्द्रियों को भटकने न दे, तो उसे सात्त्विक धैर्य कहते हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-नियंत्रण और साधना के मार्ग पर अडिग रहने वाला धैर्य ही सात्त्विक धैर्य है।

श्लोक संख्या: **18.34**

> यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन |
> प्रसंगेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी || **34** ||

हिन्दी अनुवाद:
परंतु हे पृथानंदन अर्जुन! फल की इच्छा रखने वाला मनुष्य जिस धारण शक्ति द्वारा अत्यंत आसक्ति से धर्म, अर्थ और काम को धारण करता है, वह धृति 'राजसी' है।

सरल व्याख्या:
राजसिक धैर्य वह शक्ति है जिसका उपयोग व्यक्ति केवल सांसारिक लाभ के लिए करता है। वह धर्म, धन (अर्थ) और सुख-सुविधा (काम) को पाने के लिए बहुत धैर्य और मेहनत दिखाता है, लेकिन उसका मूल उद्देश्य केवल सांसारिक फल की प्राप्ति होता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... केवल सांसारिक लाभ और सुख पाने के लिए दिखाया गया धैर्य राजसिक होता है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.35**

> यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च |
>
> न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी || **35** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य जिस धारण शक्ति के द्वारा निद्रा, भय, चिंता, दुःख और घमंड को भी नहीं छोड़ता (अर्थात उन्हीं में पड़ा रहता है), वह धृति 'तामसी' है।

सरल व्याख्या:

तामसिक धैर्य वह नकारात्मक जिद या अड़ियलपन है जिसमें व्यक्ति अपनी बुरी आदतों—जैसे अत्यधिक सोना, व्यर्थ का डर, चिंता, निराशा और घमंड को पकड़े रहता है और उन्हें सुधारने का कोई प्रयास नहीं करता।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... निराशा, आलस्य और नकारात्मक विचारों को पकड़े रखने की जिद्दी प्रवृत्ति तामसिक धैर्य है।

श्लोक संख्या: **18.36**

> सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ |
>
> अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति || **36** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे भरतश्रेष्ठ! अब तीन प्रकार के सुख को भी तुम मेरे से सुनो। जिस सुख में साधक अभ्यास के द्वारा रमण करता है और जिससे दुःखों के अंत को प्राप्त हो जाता है।

सरल व्याख्या:

भगवान अब सुख के वर्गीकरण की शुरुआत करते हैं। वे कहते हैं कि सच्चा सुख वह है जो निरंतर अभ्यास से प्राप्त होता है और जो मनुष्य के जीवन के समस्त दुःखों और कष्टों को हमेशा के लिए समाप्त कर देता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... सच्चा सुख तुरंत मिलने वाला चमत्कार नहीं, बल्कि निरंतर साधना और अभ्यास का परिणाम है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.37**

> यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् |
>
> तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् || **37** ||

हिन्दी अनुवाद:

जो सुख आरंभ काल में विष के समान कठिन लगता है, परंतु परिणाम (अंत) में अमृत के समान आनंद देने वाला होता है; वह आत्मा और बुद्धि की प्रसन्नता से उत्पन्न होने वाला सुख 'सात्त्विक' कहा गया है।

सरल व्याख्या:

सात्त्विक सुख की पहचान यह है कि शुरुआत में नियम, अनुशासन, पढ़ाई या साधना करते समय यह कड़वी दवा या विष की तरह कठिन लगता है। लेकिन जब इसका परिणाम आता है, तो वह असीम शांति और आनंद (अमृत) देता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... शुरुआत की कठिनाइयों को सहकर अंत में मिलने वाली आत्म-शांति ही सच्चा सात्त्विक सुख है।

श्लोक संख्या: **18.38**

> विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् |
>
> परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् || **38** ||

हिन्दी अनुवाद:

जो सुख इन्द्रियों और विषयों के संयोग से उत्पन्न होता है, वह आरंभ काल में भोगते समय तो अमृत के समान प्रिय लगता है, परंतु परिणाम में विष के समान कष्टदायी होता है; वह सुख 'राजस' कहा गया है।

सरल व्याख्या:

राजसिक सुख क्षणिक शारीरिक भोगों से मिलता है। शुरुआत में यह बहुत मीठा और आनंददायक (अमृत जैसा) लगता है, लेकिन बाद में इसके कारण शारीरिक रोग, मानसिक अशांति, पश्चाताप और दुःख (विष जैसा) भुगतना पड़ता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... केवल इन्द्रिय-सुख के पीछे भागना अंततः दुःखों और बीमारियों को न्योता देना है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.39**

> यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः |
> निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् || **39** ||

हिन्दी अनुवाद:
जो सुख भोगते समय भी और परिणाम में भी आत्मा को मोहने वाला (भ्रम में डालने वाला) है, तथा जो निद्रा, आलस्य और व्यर्थ के समय गँवाने (प्रमाद) से उत्पन्न होता है, वह सुख 'तामस' कहा गया है।

सरल व्याख्या:
तामसिक सुख अज्ञानता की उपज है। यह सुख ज्यादा सोने, काम से बचने के लिए आलस्य करने और व्यर्थ के कामों में समय गँवाने से मिलता है। यह न तो शुरुआत में सही होता है और न ही बाद में; यह केवल मनुष्य की चेतना को सुलाए रखता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... आलस्य और काम टालने में मिलने वाला छलावा सुख मनुष्य को पतन की ओर ले जाता है।

श्लोक संख्या: **18.40**

> न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः |
> सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः || **40** ||

हिन्दी अनुवाद:
पृथ्वी पर या आकाश में अथवा देवताओं में भी ऐसा कोई प्राणी या पदार्थ नहीं है, जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीनों गुणों (सत्त्व, रज और तम) से मुक्त हो।

सरल व्याख्या:
श्रीकृष्ण इस पूरे भौतिक ब्रह्मांड की संरचना का नियम बताते हैं। इस दृश्य जगत में चाहे मनुष्य हो, पशु-पक्षी हों या स्वर्ग के देवता —हर कोई प्रकृति के इन तीनों गुणों के प्रभाव में रहता है। केवल ईश्वर की शरण में जाकर ही इनसे परे जाया जा सकता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... संपूर्ण सृष्टि प्रकृति के तीनों गुणों से संचालित है; इनसे परे केवल परमात्मा की सत्ता है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.41**

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप |
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः || **41** ||

हिन्दी अनुवाद:
हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म उनके स्वभाव से उत्पन्न गुणों के अनुसार अलग-अलग विभक्त किए गए हैं।

सरल व्याख्या:
श्रीकृष्ण यहाँ समाज के कार्य-विभाजन का मूल आधार स्पष्ट करते हैं। वे बताते हैं कि वर्ण-व्यवस्था जन्म आधारित नहीं, बल्कि व्यक्ति के स्वभाव और उसके स्वाभाविक गुणों (सत्त्व, रज, तम) के आधार पर उसके कर्तव्यों का निर्धारण करने के लिए बनाई गई थी।

यह श्लोक हमें बताता है कि... व्यक्ति का सच्चा वर्ण उसके जन्म से नहीं, बल्कि उसके स्वाभाविक गुणों और कर्मों से तय होता है।

श्लोक संख्या: **18.42**

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च |
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् || **42** ||

हिन्दी अनुवाद:
मन का निग्रह (शम), इन्द्रियों का दमन (दम), धर्मपालन के लिए कष्ट सहना (तप), बाहर-भीतर की शुद्धि (शौच), दूसरों के अपराधों को क्षमा करना (क्षमा), सरलता (आर्जव), शास्त्रज्ञान, अनुभवजन्य ज्ञान (विज्ञान) और ईश्वर-परलोक में श्रद्धा (आस्तिकता)—ये सब ब्राह्मण के स्वभाव से उत्पन्न स्वाभाविक कर्म हैं।

सरल व्याख्या:
ब्राह्मण स्वभाव का अर्थ है ज्ञान और अध्यात्म की दिशा में जीना। जिसमें अंतःकरण की शांति, इन्द्रिय-संयम, पवित्रता, क्षमाशीलता, निष्कपटता, गहरी समझ और परमात्मा में निष्ठा जैसे सात्त्विक गुण होते हैं, वे ही उसके स्वाभाविक कर्म और कर्तव्य बनते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान का संचय, पवित्रता और क्षमाशीलता ही ज्ञानी पुरुष का वास्तविक स्वभाव है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.43**

> शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् |
> दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् || **43** ||

हिन्दी अनुवाद:
शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध में न भागना, दान देना और स्वामी भाव (नेतृत्व क्षमता)—ये सब क्षत्रिय के स्वभाव से उत्पन्न स्वाभाविक कर्म हैं।

सरल व्याख्या:
क्षत्रिय स्वभाव का अर्थ है समाज की रक्षा और कुशल नेतृत्व। ऐसे व्यक्ति में अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का साहस, संकट में धैर्य, संगठन क्षमता, दानशीलता और निर्भयता जैसे रजोगुण-मिश्रित सात्त्विक गुण प्रमुख होते हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... साहस, नेतृत्व और समाज की रक्षा का दायित्व क्षत्रिय स्वभाव का मुख्य लक्षण है।

श्लोक संख्या: **18.44**

> कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् |
> परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् || **44** ||

हिन्दी अनुवाद:
खेती करना, गोपालन करना और क्रय-विक्रय (व्यापार) करना वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं; तथा सब वर्णों की सेवा-शुश्रूषा करना शूद्र का स्वभावज कर्म है।

सरल व्याख्या:
आर्थिक व्यवस्था को चलाने के लिए उत्पादन और व्यापार का कार्य वैश्य स्वभाव के अंतर्गत आता है। वहीं समाज के सभी कार्यों में अपने श्रम और निष्ठा से सहयोग एवं सेवा देना शूद्र स्वभाव का अंग है। यह व्यवस्था समाज के संतुलन और सामंजस्य के लिए थी।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... उत्पादन, व्यापार और सेवा—हर प्रकार का श्रम समाज के सुचारू संचालन के लिए समान रूप से आवश्यक है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.45**

> स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः |
> स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु || **45** ||

हिन्दी अनुवाद:

अपने-अपने स्वाभाविक कर्मों में तत्परता से लगा हुआ मनुष्य परम सिद्धि (परमात्मा की प्राप्ति) को प्राप्त कर लेता है। अपने कर्म में लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकार सिद्धि को पाता है, उस विधि को तुम सुनो।

सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि कोई काम छोटा या बड़ा नहीं होता। मनुष्य अपने स्वाभाविक गुणों के अनुसार जो भी काम ईमानदारी और निष्ठा से करता है, उसी काम को साधना बनाकर वह ईश्वर तक पहुँच सकता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... काम की श्रेणी नहीं, बल्कि काम को करने की निष्ठा और भाव मनुष्य को महान बनाते हैं।

श्लोक संख्या: **18.46**

> यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् |
> स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः || **46** ||

हिन्दी अनुवाद:

जिस परमात्मा से समस्त प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह संपूर्ण जगत् व्याप्त है, उस ईश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

सरल व्याख्या:

यह कर्मयोग का सुंदरतम संदेश है। भगवान कहते हैं कि पूजा केवल मंदिर में बैठकर नहीं होती। अपने दैनिक कर्तव्यों को ईश्वर की पूजा मानकर निस्वार्थ भाव से करना ही परमात्मा की सच्ची आराधना है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... अपने नियत कर्मों को निष्ठा से करना ही परमात्मा की सबसे बड़ी पूजा है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.47**

> श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् |
> स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् || **47** ||

हिन्दी अनुवाद:

अच्छी तरह आचरण में लाए हुए दूसरे के धर्म (कर्म) की अपेक्षा गुणरहित भी अपना धर्म (कर्म) श्रेष्ठ है; क्योंकि अपने स्वभाव से नियत किए हुए कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को प्राप्त नहीं होता।

सरल व्याख्या:

दूसरों की देखा-देखी या चमक-दमक से प्रभावित होकर ऐसा काम अपनाना जो हमारे स्वभाव के अनुकूल न हो, तनाव और असफलता लाता है। अपने स्वाभाविक काम को ही, भले ही वह सामान्य दिखे, पूरी निष्ठा से करना कल्याणकारी है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... अपने स्वाभाविक कर्म और क्षमता के अनुसार जीना ही सच्ची प्रगति का मार्ग है।

श्लोक संख्या: **18.48**

> सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् |
> सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः || **48** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे कुंतीपुत्र! स्वभाव से प्राप्त हुए कर्म को दोषयुक्त होने पर भी नहीं त्यागना चाहिए; क्योंकि धुएँ से अग्नि की भाँति सभी कर्म किसी न किसी दोष से ढके हुए हैं।

सरल व्याख्या:

जैसे आग जलती है तो थोड़ा धुआँ भी निकलता है, वैसे ही दुनिया के हर काम में कोई न कोई छोटी-मोटी कमी या दोष हो सकता है। केवल इस डर से अपने कर्तव्य को छोड़ देना सही नहीं है। कमियों को स्वीकार करते हुए अपने फर्ज पर डटे रहना चाहिए।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... कोई भी काम पूरी तरह निर्दोष नहीं होता, इसलिए छोटी कमियों से डरकर कर्तव्य से पीछे नहीं हटना चाहिए।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.49**

> असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः |
> नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति || **49** ||

हिन्दी अनुवाद:

सब जगह आसक्ति-रहित बुद्धि वाला, स्पृहा (इच्छा) से रहित और मन को जीतने वाला मनुष्य संन्यास के द्वारा उस परम नैष्कर्म्य सिद्धि (कर्मबंधन से मुक्ति) को प्राप्त होता है।

सरल व्याख्या:

जब मनुष्य अपने मन पर नियंत्रण पा लेता है, फल की लालसा छोड़ देता है और किसी वस्तु में अटकाव नहीं रखता, तो वह कर्म करते हुए भी कर्मों के फल से पूरी तरह मुक्त रहता है। इसी को 'नैष्कर्म्य सिद्धि' कहते हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... मन और इच्छाओं को जीतकर कर्म करना ही कर्मबंधनों से पूर्ण स्वतंत्रता देता है।

श्लोक संख्या: **18.50**

> सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे |
> समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा || **50** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे कुंतीपुत्र! उस नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त होकर मनुष्य जिस प्रकार ब्रह्म (परमात्मा) को प्राप्त होता है, उस ज्ञान की परम निष्ठा को तुम संक्षेप में ही मेरे से समझो।

सरल व्याख्या:

कर्मयोग के माध्यम से जब चित्त शुद्ध हो जाता है, तब मनुष्य परमात्मा के साक्षात्कार के योग्य बनता है। श्रीकृष्ण अब अर्जुन को संक्षेप में बताने जा रहे हैं कि यह परम अवस्था किस प्रकार प्राप्त की जाती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... निष्काम कर्म से मन शुद्ध होकर ही मनुष्य परम ज्ञान और ईश्वर की प्राप्ति का अधिकारी बनता है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.51**

> बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च |
> शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च || **51** ||

हिन्दी अनुवाद:
विशुद्ध बुद्धि से युक्त, सात्त्विक धारण शक्ति द्वारा अपने मन को वश में करके, शब्दादि विषयों का त्याग करके तथा राग और द्वेष को पूरी तरह नष्ट करके।

सरल व्याख्या:
ईश्वर की प्राप्ति की ओर बढ़ने वाले साधक की प्राथमिक तैयारी यहाँ बताई गई है। इसके लिए बुद्धि का निर्मल होना, मन पर धैर्यपूर्वक नियंत्रण होना, इन्द्रियों को विषयों से हटाना और किसी के प्रति पसंद (राग) या नापसंद (द्वेष) के भाव को समाप्त करना आवश्यक है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... मन और बुद्धि को संयमित करके राग-द्वेष से परे होना ही आत्म-साक्षात्कार की पहली सीढ़ी है।

श्लोक संख्या: **18.52**

> विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः |
> ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः || **52** ||

हिन्दी अनुवाद:
पवित्र एवं एकांत स्थान का सेवन करने वाला, हल्का और सुपाच्य भोजन करने वाला, वाणी, शरीर और मन को वश में रखने वाला, निरंतर ध्यानयोग के परायण और भली-भांति वैराग्य का आश्रय लेने वाला।

सरल व्याख्या:
यहाँ साधक की जीवनशैली का वर्णन है। शांत वातावरण में रहना, आवश्यकता से अधिक न खाना, व्यर्थ की बातें और विचार न करना, और प्रतिदिन नियमित रूप से ईश्वर का ध्यान करना ही अंतःकरण को स्थिर बनाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... एकांत, मिताहार और नियमित ध्यान ही मानसिक शांति और वैराग्य के आधार हैं।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.53**

> अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् |
>
> विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते || **53** ||

हिन्दी अनुवाद:

अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रह (संग्रह वृत्ति) का पूरी तरह त्याग करके, ममतारहित और शांतचित्त हुआ पुरुष ब्रह्म (परमात्मा) भाव को प्राप्त होने का अधिकारी होता है।

सरल व्याख्या:

परमात्मा से जुड़ने में छह बड़ी बाधाएँ हैं—'मैं' का अहंकार, शक्ति का घमंड, तीव्र इच्छाएँ, गुस्सा, और चीज़ों को इकट्ठा करने की लालसा। जब मनुष्य इन छहों विकारों को छोड़कर शांत हो जाता है, तब वह परमात्मा स्वरूप बन जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... अहंकार और विकारों का त्याग ही मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति के योग्य बनाता है।

श्लोक संख्या: **18.54**

> ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति |
>
> समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् || **54** ||

हिन्दी अनुवाद:

ब्रह्म भाव को प्राप्त हुआ प्रसन्नचित्त मनुष्य न तो किसी के लिए शोक करता है और न ही किसी चीज़ की आकांक्षा करता है; वह सब प्राणियों में समान भाव रखने वाला होकर मेरी पराभक्ति (उच्चतम भक्ति) को प्राप्त होता है।

सरल व्याख्या:

जब मनुष्य परम सत्य को जान लेता है, तो उसकी आत्मा असीम आनंद से भर जाती है। फिर न उसे कुछ खोने का डर या शोक होता है और न कुछ नया पाने की लालसा। वह हर जीव में ईश्वर को देखता है और सच्ची पराभक्ति में लीन हो जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... समभाव और शोक-इच्छा से मुक्ति ही ईश्वर की सर्वोच्च भक्ति का लक्षण है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.55**

> भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः |
> ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् || **55** ||

हिन्दी अनुवाद:

उस पराभक्ति के द्वारा वह मुझे तत्त्व से जान लेता है कि मैं कितना और कौन हूँ; फिर इस प्रकार मुझे तत्त्व से जानकर वह तुरंत ही मेरे स्वरूप में प्रवेश कर जाता है (मुझमें लीन हो जाता है)।

सरल व्याख्या:

केवल ज्ञान ही नहीं, बल्कि जब ज्ञान में सच्ची भक्ति का समावेश होता है, तब मनुष्य परमात्मा के वास्तविक रूप को समझ पाता है। इस साक्षात्कार के बाद भक्त और भगवान के बीच का अंतर समाप्त हो जाता है और वह ईश्वर में ही एकरूप हो जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... प्रेम और भक्ति के बिना ईश्वर के परम रूप को पूर्णतः जानना संभव नहीं है।

श्लोक संख्या: **18.56**

> सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः |
> मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् || **56** ||

हिन्दी अनुवाद:

मेरा आश्रय लेने वाला मनुष्य सब कर्मों को सदा करता हुआ भी मेरी कृपा से सनातन और अविनाशी परम पद को प्राप्त हो जाता है।

सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण गृहस्थों और कर्मयोगियों को बहुत बड़ा आश्वासन देते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने सारे कर्तव्य निभाते हुए भी अपना मन ईश्वर में समर्पित रखता है, तो भगवान की कृपा से उसे भी वही मोक्ष और परम पद मिलता है जो किसी संन्यासी को प्राप्त होता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखकर किए गए कर्तव्य कर्म ही परम पद की प्राप्ति का द्वार खोलते हैं।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.57**

> चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः |
>
> बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव || **57** ||

हिन्दी अनुवाद:

सब कर्मों को मन से मुझे अर्पण करके, मेरे परायण होकर और समत्व-बुद्धिरूप योग का आश्रय लेकर निरंतर मेरे में चित्त वाला (मच्चित्त) हो।

सरल व्याख्या:

भगवान अर्जुन को एक सीधा और व्यावहारिक निर्देश देते हैं—'तुम जो भी काम करो, उसे मुझे समर्पित कर दो। यह मान लो कि तुम केवल निमित्त हो। अपनी बुद्धि को स्थिर रखो और अपने मन को हमेशा मेरे चिंतन से जोड़े रखो।'

> यह श्लोक हमें बताता है कि... अपने सभी कार्यों को ईश्वर को समर्पित कर देना ही कर्मों के बोझ से मुक्त होने की कुंजी है।

श्लोक संख्या: **18.58**

> मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि |
>
> अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि || **58** ||

हिन्दी अनुवाद:

मुझमें चित्त लगाने वाला होकर तुम मेरी कृपा से सब संकटों और बाधाओं को सुगमता से पार कर जाओगे; और यदि अहंकार के कारण मेरी बात न सुनोगे, तो तुम्हारा विनाश हो जाएगा।

सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण प्रेम से चेतावनी भी देते हैं। वे कहते हैं कि यदि मन ईश्वर में रहेगा, तो जीवन की कठिन से कठिन रुकावटें और परिस्थितियाँ सहज ही पार हो जाएँगी। लेकिन यदि 'मैं सब जानता हूँ' के अहंकार में आकर ईश्वरीय मार्गदर्शन की उपेक्षा की, तो पतन निश्चित है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... समर्पण से जीवन के सब संकट टल जाते हैं, जबकि अहंकार विनाश का कारण बनता है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.59**

> यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे |
> मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति || **59** ||

हिन्दी अनुवाद:

यदि अहंकार का आश्रय लेकर तुम यह सोच रहे हो कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा', तो तुम्हारा यह निश्चय व्यर्थ है; क्योंकि तुम्हारा क्षत्रिय स्वभाव तुमसे जबरदस्ती युद्ध करवा लेगा।

सरल व्याख्या:

अर्जुन जब युद्ध से पीछे हटने की बात कर रहे थे, तो भगवान उनसे कहते हैं कि यह केवल तुम्हारा तात्कालिक भ्रम और अहंकार है। तुम्हारा आंतरिक क्षत्रिय स्वभाव और संस्कार तुम्हें अन्याय के खिलाफ खड़े होने के लिए मजबूर कर देंगे, इसलिए अपनी प्रकृति से भागना संभव नहीं है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... अपनी मूल प्रकृति और स्वाभाविक कर्तव्यों से भागना व्यर्थ और असंभव है।

श्लोक संख्या: **18.60**

> स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा |
> कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् || **60** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे कुंतीपुत्र! जिस कर्म को तुम मोह के कारण (अभी) नहीं करना चाहते, अपने स्वभाव से उत्पन्न हुए उसी कर्म से बँधे हुए तुम विवश होकर भी करोगे।

सरल व्याख्या:

मनुष्य अपने स्वभाव, संस्कारों और प्रवृत्तियों के धागों से बँधा हुआ है। जब संकट या धर्म-संकट का समय आएगा, तो व्यक्ति का मूल स्वभाव ही उससे काम करवाएगा। इसलिए मोह त्यागकर स्वेच्छा से कर्तव्य पथ पर चलना ही बुद्धिमानी है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... अपने स्वाभाविक धर्म और कर्तव्यों का सहर्ष स्वीकार ही शांति का मार्ग है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.61**

> ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति |
> भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया || **61** ||

हिन्दी अनुवाद:
हे अर्जुन! परमेश्वर संपूर्ण प्राणियों के हृदय-देश में स्थित हैं और अपनी माया से, शरीर-रूपी यंत्र में सवार हुए सब प्राणियों को (उनके कर्मों के अनुसार) घुमाते रहते हैं।

सरल व्याख्या:
श्रीकृष्ण समझाते हैं कि ईश्वर कहीं दूर नहीं, बल्कि हर जीव के हृदय में विराजते हैं। जैसे कोई चालक यंत्र या गाड़ी को चलाता है, वैसे ही ईश्वर की प्रकृति और नियम प्रणाली मनुष्य को उसके कर्म संस्कारों के अनुसार जीवन-चक्र में संचालित करती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा हमारे भीतर ही विद्यमान हैं और वही संपूर्ण जीवन-संसार के मूल संचालक हैं।

श्लोक संख्या: **18.62**

> तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत |
> तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् || **62** ||

हिन्दी अनुवाद:
हे भारत! तुम सब प्रकार से केवल उस परमेश्वर की ही शरण में जाओ। उस ईश्वर की कृपा से ही तुम परम शांति को और सनातन परम पद को प्राप्त करोगे।

सरल व्याख्या:
जब मनुष्य को यह समझ आ जाता है कि सब कुछ ईश्वर के विधान से चल रहा है, तो उसका कर्तव्य बनता है कि वह अपने अहंकार को मिटाकर पूरी तरह परमात्मा को समर्पित कर दे। ऐसा समर्पण ही जीवन में परम शांति लाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर के प्रति अनन्य और पूर्ण समर्पण ही परम शांति और मोक्ष की प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.63**

> इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया |
> विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु || **63** ||

हिन्दी अनुवाद:
इस प्रकार यह गोपनीय से भी अत्यंत गोपनीय ज्ञान मैंने तुमसे कह दिया; अब तुम इस पर पूरी तरह विचार (मनन) करके, जैसा चाहते हो वैसा ही करो।

सरल व्याख्या:
यह गीता की स्वतंत्रता का अद्भुत श्लोक है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन पर जबरदस्ती अपना निर्णय नहीं थोपते। वे पूरा ज्ञान देने के बाद अर्जुन को विचार करने की पूर्ण स्वतंत्रता देते हैं कि वे अपनी बुद्धि और विवेक से निर्णय लें।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य का ज्ञान प्राप्त करने के बाद विचार-विमर्श करके स्वेच्छा से सही निर्णय लेना ही सच्चा विवेक है।

श्लोक संख्या: **18.64**

> सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः |
> इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् || **64** ||

हिन्दी अनुवाद:
सब गोपनीय बातों से भी अति गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचन को तुम फिर भी सुनो; तुम मेरे अत्यंत प्रिय हो, इसलिए यह हितकारी बात मैं तुमसे कहता हूँ।

सरल व्याख्या:
श्रीकृष्ण अर्जुन के प्रति अपने अपार प्रेम और स्नेह के कारण गीता का सबसे मुख्य और अंतिम सार-संदेश देने जा रहे हैं। वे कहते हैं कि तुम मेरे अत्यंत प्रिय मित्र और भक्त हो, इसलिए मैं तुम्हारे कल्याण के लिए यह परम रहस्य बता रहा हूँ।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वरीय प्रेम और कृपा ही जीव को सबसे गूढ़ आध्यात्मिक सत्य का अधिकारी बनाती है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.65**

> मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु |
> मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे || **65** ||

हिन्दी अनुवाद:
तुम मेरे में मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा करने वाला हो और मुझे नमस्कार कर; ऐसा करने से तुम मुझे ही प्राप्त होओगे —यह मैं तुमसे सत्य प्रतिज्ञा (वचन) करता हूँ, क्योंकि तुम मेरे अत्यंत प्रिय हो।

सरल व्याख्या:
ईश्वर-प्राप्ति के चार सरल सूत्र यहाँ दिए गए हैं—मन को ईश्वर में लगाना, ईश्वर से प्रेम करना, अपने कर्मों से ईश्वर का पूजन करना और विनम्रतापूर्वक समर्पण करना। भगवान वचन देते हैं कि ऐसा करने वाला निश्चित रूप से ईश्वर को ही पाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर में मन लगाना और समर्पण भाव रखना ही प्रभु-प्राप्ति का सबसे प्रत्यक्ष और सरल मार्ग है।

श्लोक संख्या: **18.66**

> सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज |
> अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः || **66** ||

हिन्दी अनुवाद:
सब धर्मों (कर्तव्यों, साधनों और नियमों के आश्रय) को छोड़कर केवल एक मेरी ही शरण में आ जाओ; मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूँगा, तुम शोक मत करो।

सरल व्याख्या:
यह श्रीमद्भगवद्गीता का सबसे प्रसिद्ध और महान 'चरम श्लोक' (महावाक्य) है। भगवान कहते हैं कि सब चिंताओं, विधियों और कर्मफल के संशयों को छोड़कर केवल परमात्मा की शरण स्वीकार कर लो। ईश्वर भक्त के सभी पापों को हर लेते हैं और उसे निअभय कर देते हैं।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... भगवान की अनन्य शरण में चले जाने पर मनुष्य सभी पापों, भयों और शोकों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.67**

> इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन |
> न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति || **67** ||

हिन्दी अनुवाद:

यह गीता-रूपी रहस्यमय उपदेश तुम्हारे द्वारा किसी भी काल में न तो तपरहित मनुष्य से कहना चाहिए, न भक्तिरहित से, न सुनने की इच्छा न रखने वाले से और न ही जो मुझसे द्वेष करता है उससे कहना चाहिए।

सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण इस पवित्र ज्ञान की मर्यादा तय करते हैं। वे कहते हैं कि गीता का उपदेश केवल उसी को देना चाहिए जो श्रद्धालु, संयमी, सेवाभावी और ईश्वर में श्रद्धा रखने वाला हो। जो अहंकार में डूबा हो या द्वेष रखता हो, उसे यह ज्ञान देना व्यर्थ है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रेष्ठ आध्यात्मिक ज्ञान केवल पात्र और श्रद्धालु जिज्ञासु को ही देना चाहिए।

श्लोक संख्या: **18.68**

> य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति |
> भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः || **68** ||

हिन्दी अनुवाद:

जो पुरुष मेरे में परम भक्ति करके इस परम गोपनीय गीता-शास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा (प्रचारित करेगा), वह संशय-रहित होकर मुझे ही प्राप्त होगा।

सरल व्याख्या:

यहाँ गीता के संदेश का प्रचार-प्रसार करने वाले की महिमा बताई गई है। जो व्यक्ति निष्काम भाव से ईश्वर के भक्तों तक गीता के ज्ञान को पहुँचाता है, वह भगवान की पराभक्ति को पाकर अंत में उन्हीं में लीन हो जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... गीता के सात्त्विक संदेश को दूसरों तक पहुँचाना ईश्वर की सबसे बड़ी सेवा और भक्ति है।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.69**

> न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः |
> भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि || **69** ||

हिन्दी अनुवाद:

और मनुष्यों में उससे (गीता-ज्ञान का प्रचार करने वाले से) बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करने वाला कोई भी नहीं है; तथा पृथ्वी पर उससे बढ़कर मेरा कोई दूसरा अत्यंत प्रिय होगा भी नहीं।

सरल व्याख्या:

भगवान स्पष्ट रूप से घोषणा करते हैं कि जो भी व्यक्ति निष्काम भाव से संसार में ज्ञान का दीप जलाता है और गीता के उपदेशों को जन-जन तक पहुँचाता है, वह ईश्वर का सबसे प्रिय भक्त बन जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान का दान और सद्मार्ग का प्रचार करने वाला साधक परमात्मा का अत्यंत प्रिय पात्र होता है।

श्लोक संख्या: **18.70**

> अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः |
> ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः || **70** ||

हिन्दी अनुवाद:

और जो मनुष्य हम दोनों के इस धर्मयुक्त संवाद (गीता) का अध्ययन करेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित हूँगा—ऐसा मेरा मत है।

सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि गीता का पाठ और अध्ययन करना केवल एक ग्रंथ पढ़ना नहीं है, बल्कि वह एक प्रत्यक्ष 'ज्ञानयज्ञ' है। जो भी गीता को समझकर पढ़ता है, वह मानो अपनी बुद्धि से भगवान का पूजन ही कर रहा है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... गीता का नियमित अध्ययन और मनन ईश्वर की ज्ञानयज्ञ द्वारा आराधना करने के समान है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.71**

> श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः |
>
> सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् || **71** ||

हिन्दी अनुवाद:

जो मनुष्य श्रद्धा से युक्त और दोषदृष्टि से रहित होकर केवल इस गीता-शास्त्र का श्रवण भी करेगा, वह भी पापों से मुक्त होकर उत्तम पुण्यकर्म करने वालों के शुभ लोकों को प्राप्त होगा।

सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति गीता का अध्ययन नहीं भी कर पाता, लेकिन वह बिना किसी शंका या दोषदृष्टि के केवल श्रद्धापूर्वक इसे सुनता भी है, तो उसका मन शुद्ध हो जाता है और उसे भी शुभ गतियों की प्राप्ति होती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रद्धापूर्वक गीता का श्रवण मात्र ही मनुष्य के कल्याण और पाप-मुक्ति का माध्यम बनता है।

श्लोक संख्या: **18.72**

> कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा |
>
> कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय || **72** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! क्या तुमने इस उपदेश को एकाग्रचित्त होकर सुना? और हे धनंजय! क्या तुम्हारा अज्ञान से उत्पन्न हुआ मोह पूरी तरह नष्ट हो गया?

सरल व्याख्या:

संपूर्ण उपदेश समाप्त करने के बाद श्रीकृष्ण एक उत्तम शिक्षक की भांति अर्जुन से पूछते हैं कि क्या उनका संशय और अज्ञान दूर हुआ। वे यह सुनिश्चित करते हैं कि अर्जुन ने इस ज्ञान को केवल सुना नहीं, बल्कि आत्मसात भी किया है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... सच्चा ज्ञान वही है जो हमारे मन के अज्ञान, मोह और भ्रम को पूरी तरह समाप्त कर दे।

Satvaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.73**

> अर्जुन उवाच |
>
> नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत |
>
> स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव || **73** ||

हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और मुझे मेरे स्वरूप की स्मृति प्राप्त हो गई है। अब मैं संशय-रहित होकर स्थिर हूँ और आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

सरल व्याख्या:

यह अर्जुन की अंतिम स्वीकृति है। गीता के इस ज्ञान को पाकर अर्जुन का सारा संशय, डर और मोह समाप्त हो जाता है। वे स्वयं को पहचानने के बाद पूर्ण समर्पण के साथ कहते हैं कि 'हे प्रभु, मैं आपके बताए कर्तव्य मार्ग पर चलने के लिए तैयार हूँ।'

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर ज्ञान से मोह का नाश होता है और व्यक्ति अपने परम कर्तव्य पथ पर निडर होकर आगे बढ़ता है।

श्लोक संख्या: **18.74**

> संजय उवाच |
>
> इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः |
>
> संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् || **74** ||

हिन्दी अनुवाद:

संजय बोले—इस प्रकार मैंने भगवान वासुदेव के और महात्मा अर्जुन के इस अत्यंत अद्भुत और रोमांचित कर देने वाले संवाद को सुना।

सरल व्याख्या:

महर्षि वेदव्यास की दिव्य दृष्टि से इस पूरे संवाद को देख और सुन रहे संजय राजा धृतराष्ट्र से कहते हैं कि भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच की यह दिव्य चर्चा अत्यंत अद्भुत और हृदय को रोमांचित कर देने वाली है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा और भक्त का सच्चा संवाद अत्यंत पावन और हृदय को दिव्य आनंद से भरने वाला होता है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.75**

> व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् |
> योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयं || **75** ||

हिन्दी अनुवाद:

श्री व्यासजी की कृपा से (दिव्य दृष्टि प्राप्त करके) मैंने इस परम गोपनीय योग को स्वयं योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के मुख से साक्षात कहते हुए सुना।

सरल व्याख्या:

संजय व्यासदेव जी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं कि उन्हीं की कृपा से वे इस परम ज्ञान को स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से सीधे सुनने का सौभाग्य पा सके।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... सद्गुरु की कृपा से ही मनुष्य को परम तत्त्व और ईश्वर के ज्ञान का साक्षात अनुभव प्राप्त होता है।

श्लोक संख्या: **18.76**

> राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् |
> केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः || **76** ||

हिन्दी अनुवाद:

हे राजन! भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस अत्यंत अद्भुत और पवित्र संवाद को याद कर-करके मैं बार-बार हर्षित (आनंदित) हो रहा हूँ।

सरल व्याख्या:

संजय कहते हैं कि गीता के उपदेशों और वचनों का बार-बार स्मरण करने मात्र से ही मन अपार आनंद, शांति और प्रसन्नता से भर जाता है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... भगवद्गीता के विचारों का निरंतर मनन और चिंतन ही मनुष्य के मन को सदा आनंदित रखता है।

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: **18.77**

> तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः |
> विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः || **77** ||

हिन्दी अनुवाद:
और हे राजन! श्री हरि के उस अत्यंत अद्भुत (विराट्) रूप को भी याद कर-करके मेरे मन में महान आश्चर्य होता है और मैं बार-बार हर्षित हो रहा हूँ।

सरल व्याख्या:
संजय न केवल संवाद को, बल्कि अध्याय 11 में प्रकट किए गए भगवान के विराट् स्वरूप को याद करके भी भाव-विभोर हो जाते हैं। वे कहते हैं कि ईश्वर की महिमा और रूप का स्मरण ही आनंद का स्रोत है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर के अनंत रूप और महिमा का ध्यान मनुष्य के भीतर भक्ति और असीम आनंद जगाता है।

श्लोक संख्या: **18.78**

> यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः |
> तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम || **78** ||

हिन्दी अनुवाद:
जहाँ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं और जहाँ धनुर्धारी अर्जुन हैं—वहीं पर श्री (लक्ष्मी), विजय, विभूति (ऐश्वर्य) और अचल नीति है, ऐसा मेरा मत है।

सरल व्याख्या:
यह श्रीमद्भगवद्गीता का अंतिम और मंगलकारी श्लोक है। यहाँ 'श्रीकृष्ण' ईश्वरीय कृपा/मार्गदर्शन के प्रतीक हैं और 'धनुर्धारी अर्जुन' कर्म और पुरुषार्थ के प्रतीक हैं। जहाँ ईश्वर की कृपा और मनुष्य का अपना सच्चा कर्म-पुरुषार्थ दोनों मिल जाते हैं, वहाँ सफलता, विजय, समृद्धि और सत्य की निश्चित जीत होती है।

> यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वरीय विधान पर विश्वास और अपना निष्काम कर्म—इन दोनों के मिलन से ही जीवन में वास्तविक विजय और समृद्धि आती है।

Satyaanubhuti Ashram

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे

मोक्षसंन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः || **18** ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता संपूर्णम् ||

Satyaanubhuti Ashram